चतुर्थ अध्याय

" रेवती सरन शर्मा के 'चिराग की लौ' नाटक की मंचीयता "

४.१ भूमिका --

नाटक का दृश्य पक्ष है ' मंच ' । ' मंच ' ही वह तत्व है, जहाँ पर नाटक अपनी प्रभावोत्पादकता सिध्द करता है । मंच कोई एक तत्व नहीं, बल्कि विभिन्न, स्वतंत्र अनेक छोटे तत्वों का समूह है । रंगमंच प्याज के छिलके की तरह है, उसके एक-एक छिलके को निकालते जाइएगा तो लगेगा कि यही रंगमंचीय कला है, याने कभी दृश्य - सज्जा, कभी संवाद, कभी अभिनय । एक छिलके को अलग छिलते जायेंगे तो रंगमंच का सही स्वरूप हाथ नहीं लगेगा । रंगमंच कला, संपूर्ण वस्तु है और उसी में उसका सारतत्व निहित है । अर्थात नाटक के मंचीय स्वरूप की विभिन्न शाखाओं-निर्मिति, मंच व्यवस्थापन, निर्देशन, सहायक निर्देशन, अभिनय, पार्श्व ध्वनि एवं संगीत संयोजन, पूर्वाभास, विज्ञापन, ध्वनि-प्रक्षेपन आदि समग्र तत्वों के वर्तमान स्वरूप का विवरण उसमें प्रस्तुत है ।

रंगमंच के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए डॉ. चंदूलाल दूबेजी ने लिखा है, कि "अत: अब रंगमंच से तात्पर्य सिर्फ स्थूल वास्तु से नहीं, बल्कि रंगमंच से सम्बन्ध विविध साधन एवं प्रवृत्तियों से है । रंगमंच का यह सूक्ष्म पक्ष है ।"[1] डा. दूबेजी ने रंगमंच के व्यापक अर्थ का एक भावचित्र दिया है । जैसे ---

---

१ संपादक : राजमल बोरा, नारायण शर्मा: हिन्दी नाटक और रंगमंच
डा. चंदूलाल दूबे : रंगमंच : सैध्दान्तिक स्वरूप - पृ. ८४-८५.

रंगमंच

- नाट्यकृति पक्ष (नाटक)
- प्रस्तुतीकरण
  - निर्देशन
    - अभिनय
      - आंगिक वाचिक आहार्य सात्विक
    - रंगशिल्प
  - व्यवस्था
    - रिहर्सल
    - टिकट से लेकर विज्ञापन और समापन तक का प्रबंध
- दर्शक पक्ष (सामाजिक)
- भौतिक पक्ष
  - रंगभवन
    - मंच
    - रंगशाला
    - मंचसज्जा
    - प्रकाश
    - वस्त्रविन्यास
    - रूपविन्यास
    - संगीत तथा ध्वनि विन्यास

अत: स्पष्ट है कि रंगमंच यह नाटक का एक अविभाज्य अंग है। यहाँतक कि रंगमंच के कारण ही नाटक को दृश्यकाव्य कहा जाता है। 'रंगमंच' के बारे में डा. नरनारायण राय ने लिखा है कि "रंगमंच नाटक का आशान्तरिक सत्य है और नाटक का यह सत्य जब अपने प्रदर्शन व्दारा मूर्त रूप पाता है तो उसे हम रंगमंच कहते हैं। यद्यपि इस शब्द का पारंपारिक अर्थ वह स्थान या मंडप है जहाँ नाटक खेले जाते हो, जिसका ठीक अंग्रेजी पर्याय स्टेज है।"[१] रंगमंच के लिए कभी थियेटर (Theatre)तो कभी स्टेज (stage) जैसे अंग्रेजी शब्दों

---

१ डा. नरनारायण राय - कोणार्क : रंग और संवेदना - पृ. ६४।

का प्रयोग होता है। अर्थात रंगमंच के एक सूक्ष्म कार्य के साथ उसका एक स्थूल स्थूलदर्शी अर्थ भी जुड़ा हुआ है।

नाटक और रंगमंच एक दूसरे का विकल्प न होकर एक-दूसरे के पूरक हैं। नाटक में रंगमंच के लिए अनन्यसाधारण महत्व है। गोविंद चातक के शब्दों में, "वस्तुत: मंच पर नाटक अपनी सही जिन्दगी जीता है। नाटक स्थूल भाषिक कंकाल है, प्राणशक्ति की प्रतिष्ठा उसमें मंच ही करता है।"[१] नाट्यकृति को वास्तविक पूर्णता रंगमंच ही प्रदान करता है। किसी भी नाट्यकृति का केवल साहित्यिक तत्वों को लेकर किया गया अध्ययन अधूरा रह जाएगा। उसके सर्वांगीन अध्ययन के लिए साहित्यिक तत्व के साथ 'रंगमंचीय' तत्वों का भी अध्ययन करना होगा। रंगमंच सम्बन्धित बातों में नाटकीय निर्देश, रंगमंच की व्यवस्था तथा पात्रों की वेशभूषा आदि पर दृष्टि रखनी पड़ती है। नाटकीय निर्देशों के अंतर्गत नाटक के कृतित्व पक्ष एवं प्रस्तुतीकरण, पात्रों के विविध हाव-भाव, अनुभावों एवं उनके प्रवेश, प्रस्थान के सम्बन्ध में उचित निर्देश रहते हैं। रंगमंच व्यवस्था में मंच-व्यवस्था, नेपथ्य व्यवस्था, प्रकाश व्यवस्था, संगीत व्यवस्था और ध्वनि संकेत सम्बन्धित आवश्यक निर्देश होते हैं। वेशभूषा में पात्रों की पोशाक और अलंकारणों के संकेत दिये जाते हैं।

४.२ हिन्दी रंगमंच -

संस्कृत रंगमंच के मृतप्राय हो जाने के बाद भारतीय रंगपरंपरा एक प्रकार से क्षीण होकर ही रह गयी थी। मध्यकाल में पूरी नाट्य और रंगपरंपरा अक्षुण्ण रही। उस काल में केवल साहित्यिक नाटक लिखे गये। रंगपरंपरा का ह्रास हो गया था।

---

२ डा. गोविंद चातक - रंगमंच : कला और दृष्टि - पृ.१३।

४.२.१ आरंभिक स्थिति -

१९वीं शताब्दी में नवीन पध्दती से रंगकर्म और नाट्यमंचीकरण के जो प्रयोग होने लगे, उसके लिए तत्कालीन अंग्रेजी शिक्षा कारण बनी । इस समय एक और लोकनाट्यों की परंपरा चल रही थी तो दुसरी ओर पारशी थियेटर सुसंगठित होकर उभर रहा था और लगभग एक शताब्दि तक यह लोगों पर हावी रहा । इसकी मूल प्रेरना पाश्चात्य रंगमंच था । उस काल में केवल साहित्यिक नाटकों की भरमार हो गयी । अपनी नाटयपरंपरा के आभाव में इन नाटकों की प्रस्तुती में अनेक कठिनाईयाँ आती रही । इस तरह नाटक और उसकी प्रस्तुती में एक सूत्रता न आ सकी । नाटक एक तो केवल मनोरंजन का साधन समझा गया, जो लोकनाटय के रूप में रहा और उसका साहित्यिक मूल्य न के बराबर था तथा उसे निरा साहित्यिक जामा पहनाया गया और उसे रंगमंच से अलग कर दिया गया । अत: हिन्दी नाटककारों को रंगमंच का ज्ञान परंपरा से नहीं मिला । संस्कृत नाटय परंपरा के अधूरे ज्ञान का आधार लेकर उन्हें आगे चलना पडा । इस काल के रंगमंच के बारे में डा.वीणा और सुरेश गौत्तम का कथन है कि " अंग्रेजों का भारत गमन नाटक रंगमंच के लिए पुनरोध्दार का झरोखा था । झरोखे से निकली ढंढीं बयार ने नाटक रंगमंच की दूबो को पुन: अंकुरित हरित कर दिया और इसी समय भावे की सांगलीकर मंडली, अतलेकर नाटयमंडली, किर्लोस्कर आदि मराठी नाटय मंडलियों ने हिन्दी नाटक को रंगमंच दिया ।"[१]

इसप्रकार १९ वीं शताब्दी में एक ओर पारसी रंगमंच अपना विकास कर रहा था तो दूसरी ओर उसकी प्रतिक्रिया में उसकी ओछी रसिकता से विमुख होकर प्रबुध्द जनोने एक समानान्तर अव्यावसायिक रंगमंच की सुरूआत की । डा.चंदूलाल दुबे लिखते है कि "इसतरह हिन्दी रंगमंच की दो धाराओं का प्रचलन प्रारंभ हो जाता है । एक व्यावसायिक कलाकारों का रंगमंच बनता है तो दूसरा शौकिया रंगकर्मियों का रंगमंच, जिन्हें क्रमश: व्यावसायिक रंगमंच तथा शौकिया

---

१ डा.वीणा गौत्तम और सुरेश गौत्तम - नटशिल्पी :डॉ.शंकर शेष - पृ.२०० ।

(अव्यावसायिक) रंगमंच कहा जाता है ।"[१]

४.२.२ भारतेन्दु युग -

भारतेन्दु के सामने संस्कृत, पाश्चात्य तथा पारसी नाट्यपरंपरा थी लेकिन उन्होंने उससे अलग अपना स्वतंत्र रंगमंच निर्माण करने का प्रयास किया । हिन्दी नाटय जगत में भारतेन्दु न केवल युगप्रवर्तक थे अपितु वे एक अभिनेता, दिग्दर्शक एवं नाटय चिंतक थे। सुभाषा भाटियाने लिखा है कि - "हिन्दी में सर्वप्रथम भारतेन्दु ने ही अपने 'नाटक' निबन्ध में हिन्दी नाटक के सिधान्त लिखकर हिन्दी रंगदर्शन परंपरा की नीव डाली ।"[२]

४.२.३ प्रसाद युग -

जयशंकर प्रसाद ने भारतेन्दु के मुकाबले कहीं अधिक गंभीर नाटक हिन्दी रंगमंच को दिये, परन्तु उसके लिए समुचित रंगमंचीय सुविधाएँ जुटा पाना कठिन कार्य है । अत: उनके नाटक अभिनित होने की अपेक्षा पाठ्य होकर रह गये । प्रसादकाल में रंगमंच का विकास अवरूध्द हुआ था ।

४.२.४ प्रसादोत्तर युग -

प्रसाद के बाद हिन्दी नाटक अधिकाधिक रंगमंच सापेक्ष होने लगा । लक्ष्मीनारायण लाल के अधिक नाटक उनकी प्रयोगशीलता के परिचायक बने । जगदीशचंद्र माथुर का 'कोणार्क' भी इसी रंग आन्दोलन की एक कड़ी बन गया । धर्मवीर भारती का गीतिनाटय 'अंधायुग' मंचीयता की दृष्टि से एक अद्भुतरम्य प्रयोग रहा । उसे कल्पनातीत सफलता मिली । मोहन राकेश का आगमन रंगमंच की आधुनिक भारतीय अवधारणा को सही दिशा में बढा ले गया । राकेश ने अस्तित्व की समस्या के साथ-साथ मध्यवर्गीय जीवन की टूटती-बिखरती आस्थाओं

---

१ डा. चंदूलाल दूबे - हिन्दी रंगमंच का इतिहास - पृ. २० ।

२ डा. सुभाषा भाटिया - लक्ष्मीनारायण लाल का रंगम-दर्शन - पृ. ८७ ।

को तथा अधूरेपन कीमजबूरियों को सीधे समकालीन मुहावरे में व्यक्त किया। डा.भगवानदास वर्मा ने लिखा है कि "मोहन राकेश के तीनों नाटक हिन्दी समकालीन रंगमंच के मील के पत्थर हैं।"[१] डा.शेष ने नाटककार और मंच के दिग्दर्शक दोनों को स्वायत्त सत्ता को स्वीकार किया है। नाटय लेखन से शुरू उनको नाटय यात्रा निर्देशन,मंचन आदि क्षेत्रों में भी मजबूती से अपने कदम बढाती रही। अपनी नवीनतम प्रायोगिक दृष्टि से उन्होंने हिन्दी साहित्य को अनेक अविस्मरणीय नाटय सुमनों की भेंट दी। वे हिन्दी का अपना रंगमंच निर्माण करना चाहते थे। डा.भगवानदास वर्मा लिखते हैं कि "जातीय रंगपरंपराओं के साथ पश्चिम की रंगदृष्टि को सूझ के स्तर पर समन्वित करने की परंपरा में औरों के साथ पर औरों से अलग स्थान नाटककार शंकर शेष का रहा है। सतत और पायेदार प्रयासों में विकसित रंगकर्म को उनकी समझ एक से एक बढ कर चीजें देती रही।"[२]

इस प्रकार आज का रंगमंच प्रस्तुतियों और प्रयोगों के दौर से जिस तेजी के साथ गुजर रहा है वह विकास की अनेक उपलब्धियों के साथ इसे आगे भी जोडेगा। लेकिन आज भी हिन्दी रंगमंच आवश्यक जितना संगठित रूप से विकसित नही हुआ है। डा.लाल ठीक लिखते हैं कि "हमारे यहाँ तो अभी सारे रंगतत्व बिखरे हैं। इसलिए अभी तो हमारी सारी शक्ति रंगमंच संगठन पर लगी है।"[3] इस प्रकार आज भी हिन्दी का रंगमंच संगठन विहीन है, परम्परा से टूटा हुआ,लोक और जीवन से दूर तथा दर्शक हीन है। अत: हिन्दी को ऐसे रंगमंच की आवश्यकता है, "जिसमें अपनापन हो, जो अपनी मिट्टी और बुनियाद से, जो अपने लोक जीवन से जुडा हो, वही हिन्दी का अपना रंगमंच बनने की क्षमता रखता है।"[४]

---

१ संपादक-राजमल बोरा,नारायण शर्मा - हिन्दी नाटक और रंगमंच
डा.भगवानदास वर्मा - समकालीन नाटककार - पृ.१४४।

२ डा.भगवानदास वर्मा - समकालीन नाटककार पृ.१४९।

३ डा.लक्ष्मीनारायण लाल - आधुनिक हिन्दी नाटक और रंगमंच - पृ.२२।

४ डा.सुभाष भाटिया - लक्ष्मीनारायाण लाल का रंग-दर्शन - पृ.१९५।

४.३ 'चिराग की लौ' नाटक की मंचीयता --

आज नाटक की सफलता का सर्वोत्तम मानदण्ड रंगमंच पर उसकी अभिनेयता को ही स्वीकार किया जाता है। जो नाटक रंगमंचपर अभिनय की कसौटी पर खरा नहीं उतरता नाट्य मर्मज्ञ और रंगकर्मी उसे नाटक तक मानने को तैयार नहीं होते। अत: नाटककार को यह आवश्यक है कि नाटक की रचना करते समय रंगमंच और अभिनय की सभी संभावनाओं का पूर्णतया ध्यान रखकर ही सृजन करें।

'चिराग की लौ' नाटक के लेखक रेवतीसरन शर्मा का रंगमंच से गहरा सम्बन्ध है। उनकी अपनी मंच संस्था 'कला साधना मंदिर' है। वे दिल्ली नाट्यसंघ के प्रधान और अखिल भारतीय नाटय संस्था भारतीय नाटय संघ के उप-प्रधान है। अत: रेवतीसरन शर्मा ने 'चिराग की लौ' यह नाटक रंगमंच और अभिनेयता को दृष्टि में रखते हुए ही लिखा है। स्वयं नाटककार का कथन है कि "यह मेरा पहला तीन अंकी नाटक है, जिसे मैंने स्टेज पर खेलने के लिए लिखा है।"[१]

४.३.१ निर्देशन एवं मंच व्यवस्थापन --

'चिराग की लौ' नाटक का सर्वप्रथम मंचन मंचसंस्था 'कला साधना मंदिर', दिल्ली व्दारा २१ मार्च, १९६१ को हुआ। प्रस्तुत नाट्य मंचन विधायक मंचव्यवस्था इन्द्रकुमार शर्मा व्दारा हुई थी तथा सेट की जिम्मेदारी डी.बी. नन्दा ने संभाली थी।

'चिराग की लौ' नाटक के प्रथम मंचन में निर्देशक विधायक कार्य 'कला साधना मंदिर' दिल्ली के निर्देशक इस्लामुद्दीन व्दारा संपन्न हुआ। प्रस्तुत नाटक निर्देशकीय क्षमता से परिपूर्ण है। १९६१ के आस-पास दिल्ली के

---

१ रेवती सरन शर्मा - चिराग की लौ - पृ.दो शब्द।

रंगमंच पर केवल हास्य-विनोदपूर्ण नाटकों को ही सफलता मिलती थी, उसी समय इस्लामुद्दीन को ' चिराग की लौ ' जैसे विचार प्रधान एवं गंभीर नाटक के निर्देशन और मंचन में काफी सफलता मिली है।

४.३.२ अभिनय तत्व --

रंगमंच अभिकल्पना में अभिनय का महत्वपूर्ण स्थान है। पात्रों के हाव-भाव, उनके क्रियाकलाप और उनकी मानसिक दशाएँ वास्तव में अभिनय ही है। हमारे आचार्यों ने कायिक, वाचिक, मानसिक और आहार्य इन चार भागों में अभिनय को विभाजित किया है। लेकिन अभिनय में इसका अपना कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं रहता, वे एक-दूसरे के पूरक तथा एक-दूसरे में घुल-मिल जाते हैं।

' चिराग की लौ ' नाटक की विशेषता है कि यह नाटक गंभीर और विचार प्रधान है। अत: अभिनय की दृष्टि से यह नाटक अभिनेता के केवल शारीरिक अर्थात बाह्य पक्ष पर विचार करना और संवादों को याद करके उच्चरित करने तक ही सीमित नहीं होता, अपितु उसके चरित्रों को निभानेवाले अभिनेताओं का मानसिक, बौध्दिक और शारीरिक पक्ष का ऊँचे दर्जे का होना आवश्यक है। क्योंकि अभिनेताही "लिखित नाटक के परे भी भावना और अर्थ के कई बंद व्दार खोलता है। चरित्र को देश और काल की भूमि पर साकार कर वह नाटककार की तुलना में आँखों और अन्य इंद्रियों के लिए आस्वाद के कई आयाम उपस्थित करता है।"[१] ' चिराग की लौ ' नाटक के प्रथम पंचन में निम्न अभिनेताओं ने अभिनय किया है। जैसे -- सुरेन्द्र वर्मा (किशोर) (साधना गुप्ता (तारा), वीणा सेठी (रानी) सतीश सहगल (जयन्त), सरेन्द्र सेठी (गिरीश), जी.एस.नागर (सेठजी), विनोद चोपड़ा (मुनीमजी),

---

१ डा.गोविन्द चातक - रंगमंच : कला और दृष्टि - पृ.१७।

बालकृष्ण सूद (मि.मेहता), उर्मिला राजपाल (मिसेज मेहता), वेद राही (संपादक) शारदा चोपड़ा (सेल्सगर्ल),शकुन्तला सक्सेना (आया), सुरेन्द्र शर्मा (ड्राइवर), पवनकुमार (अर्दली), वेद राही (गंगाराम), तीर्थराम आजाद (हांस मास्टर), राजगुप्त राजीव (नसीम) आदि ।

नाटक एक प्रयोगमूलक कला है । नाटक की कलात्मक सार्थकता तभी व्यक्त होती है, जब इसका अभिनय किया जाता है । रेवती सरन शर्मा स्वंय एक अच्छे निर्देशक और नाटककार होने के कारण प्रस्तुत नाटक में उन्होंने अभिनेयता की दृष्टि से अनेक संकेत दिये हैं । जैसे -- किशोर कुर्सी पकड़ता है ,तारा उतरती है, मुसकराते हुए,गहरी सांस लेकर उठते हुए,सोफे सेउठकर , थके स्वर में, वह आगे बढ़ती है, किशोर तेजी से बढ़कर उसे बाजू से पकड़ लेता है, झटककर बांह छुड़ा लेती है, कान पकड़कर , अन्दर आते हुए, उसकी बात से खिन्न होकर, घबराकर,भड़ककर, उठ खड़ा होता है, दूसरे कमरे की ओर जाते हुए, कमरे पर नजर डालते हुए,नाक चढ़ाकर,आगे बढ़कर दरवाजे पर पड़े पर्दों को थाम लेती है, पर्दा छोड़कर किताबों के रैक की ओर झुकती है, हैरान होकर, घृणा से आदि ऐसे अनेक प्रत्येक दृश्य में शारीरिक क्रियाव्यापार के साथ वाणी व्यापार और भावदशाओं के मंचन के लिए अवसर है ।

' चिराग की लौ ' नाटक की अभिनेयता की दृष्टि से यह विशेषता है कि उसमें संवादों के मध्य नाटकीय क्रियाओं के लिए अवकाश है । उसके पात्र मंच पर आकर केवल वार्तालाप नहीं करते, अपितु भाव-मुद्रा,अंग-विकास,वेशभूषा तथा स्वरोच्चार व्दारा उस प्रसंग को यथार्थ (वास्तविकता) की भावभूमिपर साकार करते हैं । डा.नरनारायण राय लिखते हैं "खाली जगहों को अभिनयादि व्दारा भरना तभी संभव होता है, जब संवादों एवं घटनाओं के बीच अवसर

उपलब्ध करायें जाएँ।"[१] एक उदाहरण दृष्टव्य है --

"तारा - (पास आकर कमीज का सामना फड़कर प्यार से हिलाते हुए) उसे कुछ नहीं होगा। वो तो यहाँ है। (किशोर के दिल की तरफ इशारा करती है।)

किशोर - अच्छा-अच्छा मेरी बातों को रिलाने की कोशिश न करो। अब जाकर नहा आओ। (बाहों में लेकर उसे अन्दर भेजने के लिए उसे दरवाजे की ओर ले जाता है।)

तारा - (बाहों से निकलकर) नहा आऊँगी। जरा सुस्ताने तो दो। (सोफे पर बैठ जाती है)

किशोर - (सोफे के हत्थे पर बैठकर उसके माथे पर हाथ फेरते हुए) थक गई ? (तारा निगाहें उठाकर उसकी ओर देखते हुए अहिस्ता-अहिस्ता गर्दन हिलाकर बिना बोले इन्कार करती है।) झूठ मत बोलो। बंधा सामान खोलना, नये घर में लगाना और बिना किसी कोमदद के - मैं जानता हूँ कितना मुश्किल होता है।"[२]

इस प्रकार नाटककार ने अभिनय के बारे में काफी संकेत दिये है।

प्रस्तुत नाटक में नाटककार ने पात्रों की आदतों के बारे में संकेत दिये हैं, जिससे अभिनेताओं को अपनी भूमिका अदा करने में सहायता मिलती है। जैसे -- मिस्टर और मिसेज मेहता का परिचय देते हुए लेखक लिखता है कि - "मिस्टर

---

१ डा. नरनारायण राय - कोणार्क - रंग और संवेदना - पृ. ६५।

२ रेवती सरन शर्मा - चिराग की लौ - पृ. २।

मेहता भी इन्कमटैक्स इन्सपेक्टर है। बीबी के सामने कुछ सहमे-सहमें रहते हैं। मिसेज मेहता उन औरतों में है, जिनपर हर चीज फटी पड़ती है - चर्बी, कपड़े, सुर्खी शृंगार। कमरे में दाखिल होते ही आदमी से पहले फर्नीचर - पर्दों, कपड़ों को अंकना - जोखना उनकी आदत है।"[१]

डा. गोविन्द चातक ने अभिनय कला के सम्बन्ध में लिखा है कि - "अभिनय कला में दो तत्वों का योग होता है - मूकाभिनय और वाणी। मूकाभिनय का सम्बन्ध हाव-भाव, मुखाकृति, गति और क्रियाव्यापार से होता है और वाणी मुख से निस्सृत मानवीय ध्वनि की विविध विशेषताओं धनत्व, गुण और तारत्व से सम्बन्ध है। दोनों का योग रंगमंच पर जीवन की अभिव्यक्ति करता है।"[२] अत: आंगिक अभिनय का सम्बन्ध नाटक में घटित घटनाओं में पात्रों की शारीरिक हलचल, हाव-भाव, क्रियाकलाप आदि से है। प्रस्तुत नाटक में आंगिक अभिनय के अनुरूप घटनाओं का चुनाव तथा पात्रों का विकास होता दिखाई देता है। यहाँ वाचिक और आंगिक अभिनय का एक सुन्दर दृश्य दृष्टव्य है --

"किशोर - (कटुता, विषाद और वेदना से) अपने सपनों को पूरा करके, मेरे खयालों का खून करके, मुझे मेरे ईमान और आदर्श से महरूम करके तुम आज मुझे सहारा देने आयी हो ? (उसे कन्धों से पकड़कर) दूर हो जाओ मेरी नजरों से। (नीचे गिरा देता है। धीरे - धीरे मंच के अगले सिरे की ओर बढ़ते हुए, सामने शून्य में देखते हुए) अपने गैरों से मिल गये। गैर अंधेरों से मिल गये - (एकाएक खड़ा होकर पूर्ण निश्चय और आत्मबल के साथ) लेकिन मैं, मैं नहीं हूँ .... (अपने हाथ कूल्हों पर रख लेता है और ऊपर की ओर देखते हुए चिराग की लौ की तरह तनकर) अन्धेरे के सीने को दागती हुई चिराग की लौ हूँ।"[3]

---

१ रेवती सरन शर्मा - चिराग की लौ - पृ.४।

२ डा. गोविन्द चातक - रंगमंच - कला और दृष्टि - पृ.४१।

३ रेवती सरन शर्मा - चिराग की लौ - पृ.८६।

अभिनेता इस सारी आंगिक और वाचिक सृष्टि का उपयोग भावाभिव्यक्ति के लिए करता है। आन्तरिक चित्तवृत्ति के प्रकाशन में तथा मनोदशाओं के प्रदर्शन में अभिनय का सात्विक पक्ष श्रेष्ठ बन जाता है। प्रस्तुत नाटक में नाटककार ने वाचिक और आंगिक अभिनय विषयक जितने विस्तार से संकेत दिये है ,उतने ही विस्तार से सात्विक अभिनय विषायक भी संकेत दिये है। जैसे - विस्मय से,बेहद उदास होकर, खिन्न होकर,मुसकराते हुए, हैरान होकर, घृणा से, पूर्ण अवसाद से,व्यंग्यपूर्वक,आँखों में आये आँसुओं को संभालते हुए, गंभीरता से,क्रोध से,ग्लानि से,बडी वेदना से, द्रवित होकर, चिन्तित होकर, जज्बात से काँपकर आदि अनेक सात्विक भावों के अभिनय के लिए काफी स्थान उपलब्ध हैं। सूक्ष्म सात्विक अभिनय सम्बन्धि दिए गए निर्देश अभिनय पक्ष विषायक रेवती सरन शर्मा के गहरे अध्ययन का परिचय देते हैं। उन्होंने पात्रों के भावों और मन:स्थितियों को गहराई से व्यंजित किया है। संवादों के आदि, मध्य और अंत में दिए इन निर्देशों से अभिनेताओं को अपनी भूमिकाएँ निभाने में तथा निर्देशक को निर्देशन में विशेष सहायता मिल जाती है।

अभिनय की दृष्टि से किशोर,तारा,गिरीश,रानी नसीम आदि के चरित्र महत्वपूर्ण हैं। जयंत तथा गिरीश का चरित्र प्रतिनायक का चरित्र है। इसतरह 'चिराग की लौ' नाटक अभिनेय की दृष्टि से एक सफल रचना है। उसमें अभिनय के विभिन्न पहलुओं को मंचित करने की क्षमता है।

४.३.३ रूप सज्जा --

'चिराग की लौ' नाटक में रेवती सरन शर्मा ने चरित्रों की रूपसज्जा और वेशभूषा विषायक आवश्यक रंगसंकेत दिये है। दृश्य के अनुरूप परिवर्तित रूपसज्जा की भी समग्र जानकारी तथा रंग संकेत नाटककार ने दे दिये हैं। रूपसज्जा के बारे में डॉ.गोविन्द चातक लिखते है कि "वेशभूषा मंच पर एक वातावरण

निर्माण करती है। उसका सबसे बडा उद्देश्य एक ओर प्रेक्षक को पात्र की प्रतीति करानी होती है, दूसरी ओर नाटक की व्याख्या। व्याख्या से तात्पर्य यह है कि, वेशभूषा के माध्यम से ही प्रेक्षक पात्र के देशकाल-वातावरण, अवस्था, आर्थिक स्तर, मनोविज्ञान आदि से सम्बन्ध में अपना एक बिम्ब बनता है।"[१] अर्थात रूपसज्जा ही वास्तव में अभिनेता का पात्र की भूमिका में रूपांतरण करती है। अत: रूपसज्जा तथा वेशभूषा का नाटक में महत्वपूर्ण स्थान है।

'चिराग की लौ' यह आधुनिक कालीन नाटक है। नाटककार ने रूपसज्जा तथा वेशभूषा विषायक अनेक संकेत दिये हैं, जिससे देश, काल, अवस्था, आर्थिक स्तर आदि का ज्ञान होता है। जैसे -- प्रथम दृश्य में --"तारा ने हैन्डलूम की चैक की धोती पहनी है, किशोर ने कमीज और पाजामा पहना है।"[2] गिरीश की वेशभूषा विषायक संकेत तीसरे दृश्य में दिये है - 'उम्दा सूट पहना है, सिर पर सफेद हैट है।"[3] तारा और किशोर के वार्तालाप से किशोर के वेशभूषा विषाय संकेत मिलते हैं। जैसे ---

"तारा - लेकिन कोट और टाई ....

किशोर - (निर्णयात्मक स्वर में) भई, बस यही काम मुझसे न होगा। रानी जी आप ही इन्साफ कीजिये कि इस गर्मी के मौसम में टाई और कोट पहनने से बडी सजा और क्या हो सकती है।

---

१ डा. गोविन्द चातक - रंगमंच : कला और दृष्टि - पृ.५६।

२ रेवती सरन शर्मा - चिराग की लौ - पृ.१।

३ वही पृ.३९।

तारा - तो वह सिल्क की टरबेनाइज्ड कालर की कमीज ही पहन जाइये। या वह भी तकलीफ देती है।"[१] नाटककार ने अन्य पात्रों की वेशभूषा विषायक भी संकेत दिये हैं -- सेठजी के लिए पगड़ी, सफेद कोट और धोती, मुनीम के लिए पगड़ी, कुरता और धोती, ड्राइवर के लिए नीलीवर्दी-कैप समेत, बैरे के लिए सफेद वर्दी आदि।

दृश्य के अनुरूप परिवर्तित रूपसज्जा विषायक संकेत भी दिये हैं। जैसे -- जयन्त की बहुत देर से नींद से उठने की आदत है। जयन्त अभी नींद से उठ गया है। इस दृश्य के अनुरूप उसकी वेशभूषा विषायक रंग संकेत दिये हैं जैसे -- "जयन्त के मुँह में पाईप है, बदन पर नाइट गाऊन है, चेहरे पर सेव का साबुन लगा हुआ है।"[२] तारा आरंभ में साधारण आर्थिक स्थिति के कारण हैन्डलूम की धोती पहनती है - लेकिन जब वह रानी के साथ रहने लगती है, गिरीश के दफ्तर में नौकरी करती है तब आर्थिक आय के साथ उसकी वेशभूषा में भी बदलाव आ जाता है। पांचवें दृश्य में इसका जिक्र किया गया है कि अब वह हैन्डलूम की धोती की जगह लेटेस्ट डिजाईन के कपड़े पहनने लगी है। सातवें दृश्य में तारा का कीमती साड़ियों, फर का कोट और काला चश्मा पहनने का उल्लेख नाटककार ने किया है। तारा को कीमती साड़ियाँ, फर का कोट या चश्मा पहनना इसलिए संभव हो गया कि अब वह भ्रष्टाचार से हजारों रूपये कमाती है। अत: स्पष्ट है कि आर्थिक स्तर के अनुरूप तारा की वेशभूषा में नाटककार ने अंतर दिखाया है। रानी के लिए सिल्क और रेशम की कीमती रंग-बिरंगी साड़ियों का उल्लेख नाटक के दूसरे दृश्य में हुआ है। जयंत एक मिल-मालिक है, जो अपने घर में नौकर, कार, टेलिफोन रखने की क्षमता रखता है।

---

१ रेवती सरन शर्मा - चिराग कौला - पृ.२५।

२ वही पृ.४०।

अत: जयन्त एक संपन्न व्यक्तित्व होने के कारण उसका सूट, बूट, टाय आदि रूपसज्जा से सज्जित होना आवश्यक है।

इस प्रकार नाटककार ने प्रस्तुत नाटक में रूपसज्जा तथा वेशभूषा विषायक समग्र संकेत दिये है। उसमें नाटककारने आर्थिक स्तर तथा दृश्य के अनुरूप परिवर्तित रूपसज्जा विषायक भी संकेत दिये हैं।

४.३.४ दृश्य सज्जा (दृश्यबंध)

रंगमंचीय अभिकल्पना का एक महत्वपूर्ण तत्व दृश्यबंध है। किसी भी नाटक का वस्तुविन्यास तथा अंकविभाजन दृश्यबंध की संकल्पनापर ही निर्भर करता है। दृश्यबंध के साथ दृश्यसज्जा या मंचसज्जा शब्द का प्रयोग भी किया जाता है। दृश्यबंध के बारे में डा.गोविन्द चातक ने लिखा है कि- "दृश्यबंध या सेटिंग किसी दृश्य की वह अलंकारिक या सादृश्यमूलक पृष्ठभूमी है जो प्राय: पूरे नाटक में कभी बदलती कभी एक सी रहती है। व्यापक अर्थ में इसे रंग संस्कार भी कह सकते है। दृश्यसज्जा इस अर्थ में वह मंचीय विधान है जो नाटकीय क्रिया - व्यापार की विकासमान स्थितियों में देश और काल की अभिव्यक्ति के लिए विभिन्न दृश्यावलियों का उपयोग करता है।"[१] इस प्रकार दृश्यसज्जाकार अपनी दृश्य योजना से अभिनेता के लिए आवश्यक वातावरण निर्माण करता है। इस वातावरण के निर्माण के आधार पर मंच पर देश,काल का सत्याभास प्रस्तुत किया जाता है।

'चिराग की लौ' नाटक के प्रथम अंक का दृश्यबंध एक कमरा है,जो किशोर का निवास स्थान है। दूसरे अंक का दृश्य बंध रानी का ड्राईंग रूम है। तीसरे और पहले अंक का दृश्यबंध एकही है। अत: प्रस्तुत नाटक के मंचन के लिए

---

१ डा.गोविन्द चातक - रंगमंच : कला और दृष्टि - पृ.४७।

दो प्रकार की दृश्यसज्जा अनिवार्य है। नाटककार ने नाटक में मंचीय सुविधा के हेतु यथार्थ शैली की दृश्य सज्जा का आयोजन किया है। नाटककार ने नाट्य रचना समय के रंगमंचीय विकास को मद्दे नजर रखते हुए अत्यंत सरल दृश्य सज्जा का आयोजन किया है। प्रथम अंक के लिए आधुनिक ढंग के किशोर के कमरे की दृश्यसज्जा इस प्रकार बताई है -- "एक साधारण-सा कमरा, जिसमें सामान ठीक तरह से लगाया नहीं जा सका है। बीच में बेत का बुना सोफा सेट है, जिसपर गद्दियाँ रखी है। दाहिनी तरफ एक शृंगार मेज है जो नई खरीदी गई है पर सस्ती है। बीच में मैन्टलपीस पर एक पुराने डिजाईन की अलार्म क्लाक रखी है। जिसका अलार्म किस समय बज जाए, अलार्म को सूई सैट करने के बाद भी भरोसे से नहीं कहा जा सकता। घडी के दोनों तरफ एक बुक-रैक है, जिसमें बहुत सी किताबें है। कोने में एक लिखने की मेज और कुर्सी है। बाहर का दरवाजा दाहिनी तरफ है और अन्दर का दायी तरफ।" [१]

'चिराग की लौ' नाटक का द्वितीय अंक रानी के ड्राईंग रूप में खेला गया है। लेकिन नाटककार ने रानी के ड्राईंग रूप की सज्जा विषयक विस्तार से कोई संकेत नहीं दिये हैं। केवल इतना भर लिखा है कि "रानी का शानदार ड्राईंग रूम।"[२] लेकिन नाटककार ने रानी के ड्राईंग रूम में स्थित चीजों की सूची पुस्तक के आरंभ में दी है जिससे यह अनुमान किया जा सकता है कि रानी के ड्राईंग की सज्जा किस प्रकार होगी। रानी के ड्राईंग रूम में निम्न चीजें होने का जिक्र किया है -- बढिया पर्दे, तीन सेट, शानदार सोफा सेट, दीवान, उसका कवर और चौकोर गद्दियाँ, पिडास्टल लैंप, टेबल लैंप, गुलदान गमले फूलों के कालीन, रेडियों, सेंटर टेबल, शीशे की टॉपवाली छोटी तिपाइयाँ, गाव तकिया,

---

१ रेवती सरन शर्मा - चिराग की लौ - पृ.१।

२ वही पृ.३३।

टेलीफोन आदि । प्रथम अंक की दृश्य सज्जा में एकदम हल्के-फुल्के परिवर्तन से द्वितीय अंक के लिए दृश्य सज्जा तैयार की जा सकती है । इसलिए दृश्य सज्जा निर्माण में कोई बडी या तात्त्विक बाधा नहीं रह जाती । रेवती सरन शर्मा ने ' चिराग की लौ ' नाटक के लिए दो दृश्यबंधों की योजना की है, लेकिन वह अत्यंत सरल है । अत: दृश्य सज्जा के निर्माण में कठिनाइयों का सामना नहीं करना पडता ।

अत: स्पष्ट है कि प्रस्तुत नाटक के लिए नाटककार रेवती सरन शर्मा ने मंचीयता की दृष्टि से कुशलतापूर्वक मंचसज्जा की योजना की है ।

४.३.५ प्रकाश योजना -

प्रकाश योजना के कारण वेशभूषा, मंचीय साज सज्जा, ध्वनि, दृश्य, प्रस्तुति के प्रयोग आदि में परिवर्तन देखने को मिलता है । आज साईक्लोरामा के माध्यम से रंगमंचपर सूर्योदय, सूर्यास्त, आंधी, तूफान आदि सभी को स्लाईड के इफेक्ट प्रोजक्ट की सहायता से दिखाया जा सकता है । बिन्दुप्रकाश से (स्पॉट लाईट) आलोकित दृश्य के एक पूरे भाग को दिखाया जा सकता है । प्रकाश योजना के माध्यम से एक ही दृश्यबंध में मंच के विभिन्न भागों और पृष्ठभूमियों पर अनेक दृश्यों की योजना संभव हो सकती है । दर्शक रंगमंचीय प्रकाश व्यवस्था से अत्यंतिक प्रभावित होता जा रहा है । इसलिए आज प्रकाश योजना की सहायता से नाटकीय प्रयोग नये भावबोध में बंधकर विकास की ऊँचाइयों को छूने लगे है । अभिनय एवं पात्रों के क्रियाकलापों को अभिव्यक्त करने के लिए, पात्रों के उद्दीपन भावों को दिखाने के लिए प्रकाश व्यवस्था का प्रयोग किया जाता है ।

सात दृश्यों में विभाजित ' चिराग की लौ ' नाटक में नाटककार ने अंधकार और प्रकाश योजना का प्रयोग दृश्य और अंक परिवर्तन के लिए किया गया

है। दृश्य में पात्रों के कार्यव्यापारों को प्रकाश के व्दारा संप्रेषित किया गया है। समय सूचक शब्दों व्दारा संकेत देकर वातावरण निर्माण हेतु प्रकाश संयोजन का प्रयोग किया है। जैसे -- "तीन बज गये, सव्वातीन बजे को 'शो' शुरू होता है।"[1] तीसरे दृश्य में "दो बजने को आए हैं और तुम अभी शेव बनाकर नहाने का इरादा ही कर रहे हो।"[2] नाटक के अंत में सारी लाइटें उसके (किशोर) चेहरे पर पड़ती हैं। इस संकेत व्दारा गंभीर वातावरण का निर्माण किया है। किशोर के भावात्मक और निश्चयात्मक रूप का प्रभाव दर्शक के दिलो-दिमाग पर छा जाता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रकाश योजना का दृश्य प्रयोजन के लिए सार्थक उपयोग किया है। प्रकाश-विधायक प्रयोग इसमें कम है। क्योंकि १९६० ई के आस-पास प्रकाश का मंच पर तकनीकी उपयोग इतना विकसित नहीं हो पाया था जैसा आज है।

४.३.६ ध्वनि एवं संगीत संयोजन -

आजकल नाटकों में संगीत का प्रयोग किसी खास प्रभाव को बढ़ाने के लिए और नाटक को गतिशील बनाने के लिए होता है। ध्वनि और संगीत के कारण नाटक में स्थापित विषाक्तता और विसंगति खत्म होकर नाटक में एक सुचारू स्थिति पैदा होती है। कभी-कभी ये संगीत नेपथ्य में तो कभी-कभी मंचपर दिखाई देता है। नाटककार मंचीय परिवेश में अधिक सजीवता प्रदान करने के लिए मंचीय घटनाओं को विश्वसनीयता वृध्दिंगत करने के हेतु विभिन्न प्राकृतिक,अप्राकृतिक ध्वनियों का भी प्रयोग करता है। यह प्रकाश की तरह स्थल,काल सूचन के साथ

---

१ रेवती सरन शर्मा - चिराग की लौ - पृ.८।

२ वही पृ.४०।

चरित्रों की मानसिक दशाओं को उजागर करते हैं।

'चिराग की लौ' नाटक में नाटककार ने पार्श्वध्वनि तथा संगीत विषयक भी कुछ संकेत (निर्देश) दिये है। जैसे -- रानी भरत-नाट्य सीख रही है। उसे भरत-नाट्य सीखाने के लिए एक मदरासी डान्सटीचर भी है। नाटककार ने मंच पर रानी के प्रत्यक्ष नृत्य की रचना की है। अत: वाद्य-संगीत के लिए तबले का प्रयोग किया है। इसप्रकार संगीत प्रत्यक्ष मंच पर दिखाई देता है। पार्श्व ध्वनियों के रूप में यथार्थ वातावरण के निर्माण हेतु पृष्ठभूमि में "टेलीफोन की घण्टी की आवाज"[१], "अलार्म बज उठने की आवाज",[२] "दरवाजे पर दस्तक की आवाज"[३] "बाहर से दूधवाले की आवाज"[४] आदि सम्बन्धित निर्देश दिए हैं।

इस प्रकार 'चिराग की लौ' में नाटककार ने ध्वनि और संगीत का प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष (अर्थात पार्श्व में) रूप में प्रयोग किया है। नाटककार पार्श्व ध्वनियों व्दारा यथार्थ का वातावरण उजागर करने सम्बन्धि अधिक आग्रही दिखाई देता है।

४.३.७ रंगमंचीय प्रस्तुती और दर्शकीय संवेदना --

नाटक के रंगमंचीय आयामों में रंगमंचीय प्रस्तुती का अपना अलग महत्व है। किसी भी नाटक का प्रस्तुतीकरण नाटककार व्दारा नाटक में दिये गये रंगसंकेतों के आधारपर तथा किसी कुशल निर्देशक के निर्देशनपर किया जाता है। रंगमंचीय प्रस्तुती में नाटककार और निर्देशक के साथ-साथ अन्य रंगकर्मियों का भी महत्वपूर्ण योगदान रहता है। नाटक रंगमंच पर खेला जाता है और दर्शक उसे देखने का आनंद लूटते हैं। नाटक और दर्शक के परस्पर सम्बन्ध को डा. चंदूलाल दुबेजी के शब्दों

---

१ रेवती सरन शर्मा - चिराग की लौ - पृ.३८।
२ वही पृ.१४।
३ वही पृ.७३।
४ वही पृ.७५।

में देखिए - "नाटक और दर्शक अन्योन्याश्रित हैं। नाटक देखने के लिए दर्शक आते हैं। दर्शकों के लिए नाटक खेले जाते हैं। दर्शकों के अभाव में नाटक का प्रदर्शन असंभव है। नाटक दर्शकों पर अपना प्रभाव डालता है, तो दर्शक भी नाटक को प्रभावित करते हैं। नाटक की कथावस्तु संगीत एवं अभिनय से सहृदय दर्शक प्रभावित होता है।" [१]

नाटककार रेवती सरन शर्मा ने लिखा है कि दिल्ली के रंगमंचपर केवल हास्य-विनोदपूर्ण नाटकों को ही, जिसमें लतीफेबाजी हो, लैंगिक छेडछाड हो, उटपटांग घटनाओं की भरमार हो - सफलता मिलती है, इस प्रकार की गलतफहमी दिल्ली के रंगमंच के लिए लिखनेवाले नाटककारों और निर्देशकों की हो गयी थी। अत: रेवती सरन शर्मा को भी 'कॉमेडी' लिखने की सलाह दी गई। लेकिन शर्मा ने 'कॉमेडी' लिखने की बजाय 'चिराग की लौ' गंभीर, विचार प्रधान नाटक लिखकर दे दिया। नतीजा यह निकाला कि दिल्ली के नाटक देखनेवालों ने कॉमेडी की अपेक्षा इस गंभीर और विचारप्रधान नाटक को देखना अधिक पसंद किया। नाटककार के शब्दों में -- 'लेकिन मुझे यह तजुर्बा करके बडी खुशी हुई कि दिल्ली के नाटक देखनेवालों पर जो लांछन लगाया जाता है, वह बडी हद तक मंच नाटककारों की अपनी उथली प्रवृत्ति, विचार-शून्यता और अपने कलम पर अविश्वास की परछाई है। दिल्ली में गंभीर नाटकों के प्रति कोई एलर्जी नहीं है। यहाँ के लोग न केवल उसे पसंद करते हैं बल्कि उसके गंभीर स्थलों और विचारशील संवादों पर उससे भी ज्यादा जोरदार दाद देते हैं, जैसे कि आमतौर पर मनोरंजक स्थलों पर देते हैं।" [२]

---

१ संपा. शिवराम पाठी - नाटक और रंगमंच - पृ.२४४।

२ रेवती सरन शर्मा - चिराग की लौ - दो शब्द।

स्पष्ट है कि प्रस्तुत नाटक दर्शकीय संवेदना को झकझोर देनेवाला है, साथ ही दर्शक को प्रभावित करनेवाला एक सफल नाटक है।

निष्कर्ष

'चिराग की लौ' रंगमंच और अभिनय की दृष्टि से एक सफल नाट्य रचना है। प्रस्तुत नाटक में नाटककार ने अभिनय सम्बन्धि पर्याप्त रंग-निर्देश दिये हैं। कायिक, वाचिक अभिनय के साथ-साथ सात्विक अभिनय के भी अनेक अवसर प्रदान किये हैं। उन्होंने पात्रों के भावों और मन:स्थितियों को गहराई से व्यंजित किया है। रूपसज्जा तथा दृश्यसज्जा विषयक समग्र रंग संकेत नाटककार ने दिये हैं। दृश्य के अनुरूप तथा आर्थिक स्तर के अनुरूप परिवर्तित रूप सज्जा विषयक भी सूक्ष्म संकेत या निर्देश नाटककार ने दिये हैं। प्रस्तुत नाटक में मंचन के लिए दो प्रकार की दृश्यसज्जा आवश्यक है। लेकिन महत्वपूर्ण बात यह है कि प्रथम प्रकार की दृश्यसज्जा में हल्के-फुलके परिवर्तन से दूसरे प्रकार की दृश्यसज्जा तैयार की जा सकती है। सरल दृश्यसज्जा इसकी विशेषता है। प्रकाश योजना का प्रयोग अंक तथा दृश्य विभाजन के साथ वातावरण निर्मिति के लिए भी किया है। प्रकाश-विषयक प्रयोग अत्यंत कम है। ध्वनि एवं संगीत आदि का नाट्य प्रदर्शन शैली के अनुरूप नाटककार ने प्रयोग किया है। ध्वनि योजना में वैज्ञानिक उपकरणों का भी प्रयोग किया है। प्रसंग (घटना) के अनुरूप संगीत की प्रत्यक्ष योजना मंच पर की गई है। पार्श्व ध्वनि और संगीत का सफल प्रयोग किया है। प्रस्तुत नाटक दर्शकीय संवेदना को झकझोर देनेवाला तथा दर्शक को प्रभावित करनेवाला है। 'चिराग की लौ' नाटक का प्रथम प्रयोग दिल्ली के कला साधना मंदिर ने २१ मार्च, १९६१ को किया। इस प्रकार यह नाटक अभिनय और रंगमंचीयता की दृष्टि से अत्यंत उत्कृष्ट और सफल नाट्य रचना है।